कषायरहित होने की बात।

कोहं खमया माणं समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं जयदि खु ए चहुविहकसाए।।११५।।

यहाँ जरा शब्द में अन्तर पड़ गया। यहाँ खलु चाहिए।

अभिमान मार्दव से तथा जीते क्षमा से क्रोध को।
कोटिल्य आर्जव से तथा संतोष द्वारा लोभ को॥११५॥

टीका : यह, चार कषायों पर विजय प्राप्त करने के उपाय के स्वरूप का कथन है। जघन्य, मध्यम और उत्तम ऐसे (तीन) भेदों के कारण क्षमा तीन (प्रकार की) हैं। यह सम्यक्त्वसहित की बात है। अकेली क्षमा की नहीं। ज्ञानानन्द आत्मा के स्वभाव का वेदन है, उसके साथ जो यह क्रोध होता है, उसका नाश कैसे करना, उसकी बात है। **जघन्य, मध्यम और उत्तम ऐसे (तीन) भेदों के कारण क्षमा तीन (प्रकार की) हैं। (१) 'बिना-कारण अप्रिय बोलनेवाले...** विचार करते हैं। **मिथ्यादृष्टि को बिना-कारण मुझे त्रास देने का उद्योग वर्तता है, वह मेरे पुण्य से दूर हुआ;'...** वह मेरे पुण्य से दूर हुआ। वापस पुण्य आया इसका। यह तो ज्ञान कराया है। मुझे त्रास उसे देना था परन्तु पूर्व का पुण्य था, इसलिए वह त्रास न दे सका। पुण्य अपना नहीं है परन्तु समझाना है तो किस प्रकार समझावे ? **मेरे पुण्य से दूर हुआ;'—ऐसा विचारकर क्षमा करना वह प्रथम क्षमा है।**

*** वचनचर=वन में रहनेवाले, भील आदि मनुष्य अथवा शेर आदि जंगली पशु।**

(२) '(मुझे) बिना-कारण त्रास देनेवाले को ताड़न का... 'मार मारना वह।' और वध का... 'मार डालना वह।' परिणाम वर्तता है, वह मेरे सुकृत से दूर हुआ;'... सुकृत अपना है ? समझाना किस प्रकार ? सुकृत अर्थात् पूर्व का पुण्य। उससे वह वध करने आया परन्तु नहीं हुआ। ताड़न मारने का या वध करने का पूर्व के पुण्य के कारण रुका, ऐसा स्वयं समाधान करके शान्ति रखता है। आनन्द में रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेली क्षमा, ऐसा यहाँ नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्द में रहने पर ऐसा कोई ताड़न और मारन आवे तो, उसका विकल्प से समाधान करता है कि यह उसके सुकृत पूर्व के पुण्य के कारण सब रुक गया। बाकी क्षमा तो आत्मा के आनन्द में स्थिरता करना, वह क्षमा है। आहाहा! अकेली आत्मज्ञानरहित क्षमा, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

(३) वध होने से... तथापि वध किया। दूसरे ने इसे मार डाला तो इसे ऐसी क्षमा करना कि बिना **वध होने से अमूर्त परमब्रह्मरूप....** मैं तो **परमब्रह्मरूप ऐसे मुझे हानि नहीं होती...** मुझे कोई नुकसान नहीं कर सकता। मेरा वध कोई नहीं कर सकता। आहाहा! **वध होने से अमूर्त परमब्रह्मरूप...** देखो! ऐसा लिया। अकेली क्षमा नहीं, मिथ्यात्व सहित नहीं। आहाहा! वह क्षमा ही नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, ज्ञान बोधचित्स्वरूप। चित् अर्थात् ज्ञान। ऐसे स्वभाव का... इसमें एक जगह आया है। आ गया है या अब आयेगा ? अब आयेगा। ज्ञान और चित्। ११६ गाथा में। **बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं।** ११६वीं गाथा की टीका की दूसरी लाइन। गाथा, गाथा। ११६ गाथा। **बोध, ज्ञान और चित्त...** तीनों एक वस्तु है। ज्ञानस्वरूप आत्मा, बोधस्वरूप आत्मा सब एक ही बात है। चित्स्वरूप आत्मा। चित् अर्थात् ज्ञान। तीनों ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ, ऐसा होने से... यह क्षमा के प्रकार आये न ?

वध होने से अमूर्त परमब्रह्मरूप ऐसे मुझे... आहाहा! आत्मा है कौन ? आहाहा! परमब्रह्मस्वरूप। अमूर्त परमब्रह्मस्वरूप। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं और परम आनन्दस्वरूप है। अन्तर्दृष्टि करने पर ज्ञायकभाव अमूर्त और अतीन्द्रिय स्वरूप दृष्टि में आता है। आहाहा! इससे मेरा वध कोई नहीं कर सकता। आहाहा! **वध होने से अमूर्त परमब्रह्मरूप ऐसे मुझे हानि नहीं होती...** शरीर को थोड़े... **ऐसा समझकर परम समरसीभाव में स्थित रहना,...** परम समरसीभाव में स्थित रहना, **वह उत्तम क्षमा है।**

इन (तीन) क्षमाओं द्वारा क्रोधकषाय को जीतकर, मार्दव द्वारा मानकषाय को,... मार्दव अर्थात् कोमलता। कोमलता द्वारा मान को जीतकर, सरलता से – ऋजुता से, सरलता से माया को जीतकर **मायाकषाय को तथा परमतत्त्व की प्राप्तिरूप सन्तोष...** आहाहा! लोभ को जीतने की विधि यह है। **परमतत्त्व की प्राप्तिरूप सन्तोष...** परम आनन्दस्वरूप भगवान की जहाँ अन्तर्मुख होकर प्राप्ति हुई, उसे सन्तोष हुआ, उस सन्तोष से उसने लोभ को जीता। चारों ही बोल का आ गया है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २१६, २१७, २२१ तथा २२३ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

चित्तस्थमप्यनवबुद्ध्य हरेण जाड्यात्,
क्रुद्ध्वा बहि: किमपि दग्धमनङ्गबुद्ध्या।
घोरा–मवाप स हि तेन कृता–मवस्थां,
क्रोधोदयाद्भवति कस्य न कार्यहानि:।।

[श्लोकार्थ:] कामदेव... शंकर को कामदेव ऐसा लगा कि **(अपने) चित्त में रहने पर भी...** कामदेव तो अपने चित्त में है। आत्मा के आनन्द से विरुद्ध। आहाहा! ऐसी पर की कामना, वह आत्मा के चित्त में है, उसे मारना चाहिए। उसके बदले **जड़ता के कारण उसे न पहिचानकर,...** अपने आनन्दस्वभाव में क्रोध किस प्रकार होता है? चित्त में काम का क्रोध क्यों है, उसकी खबर बिना **शंकर ने क्रोधी होकर बाह्य में किसी को कामदेव समझकर उसे जला दिया।** उन लोगों में आता है न, कामदेव को जलाते हैं। शंकर ने जला डाला।

(चित्त में रहनेवाला कामदेव तो जीवित होने के कारण) उसने की हुई घोर अवस्था को (-कामविह्वल दशा को) शंकर प्राप्त हुए। आहाहा! अन्दर काम की इच्छा, पूर्णानन्द के नाथ से विरुद्ध इच्छा, उस इच्छा को नहीं जलाया और उस दूसरे को किसी को कामदेव मानकर जलाया। **क्रोध के उदय से (-क्रोध उत्पन्न होने से) किसे कार्यहानि नहीं होती?** आहाहा! ऐसा कहते हैं। क्रोध करने पर... क्रोध अर्थात् क्रूरता। बहुत क्रोध करे तो लाल आँख हो जाए। ऐसा क्रोध करने से किसे हानि नहीं होती? **किसे कार्यहानि नहीं होती?** होती ही है, ऐसा कहते हैं। क्रोध करने पर हानि होती ही है। क्योंकि

आत्मा क्रोधरहित स्वभाव है। पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञायक बोध, ज्ञानस्वभावी वस्तु है, उसमें यह क्रोध उसके स्वभाव को हानि करता है। आहाहा!

क्रोध का अर्थ द्वेष का अंश है। द्वेष के दो भाग : क्रोध और मान। शुद्धचैतन्यस्वरूप जो है, उसके प्रति प्रेम नहीं और राग का प्रेम है, इसका नाम क्रोध है। आहाहा! द्वेष अरोचकभाव। आत्मा आनन्द का भाव उसे नहीं रुचता, वही द्वेष है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, वह नहीं रुचता। उसके विरुद्ध का भाव, रागादि-पुण्यादि रुचते हैं, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! ऐसी व्याख्या। यह तो आनन्दघनजी ने कहा है श्वेताम्बर। तीसरे सम्भवनाथ (स्तवन में कहा है) द्वेष अरोचकभाव। स्वरूप शुद्ध चैतन्य रुचता नहीं, इसका अर्थ ही यह कि उसके प्रति द्वेष है। आहाहा! और उससे विरुद्ध जो राग, उसका प्रेम है, तब इसका द्वेष है। यहाँ राग है तो यहाँ द्वेष है। आहाहा! राग का राग है, वहाँ प्रभु के प्रति द्वेष है। आहाहा! प्रभु अर्थात् आत्मा स्वयं। आहाहा! उससे **किसे कार्यहानि नहीं होती ?** यह श्लोक कहा।

दूसरा श्लोक।

चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसन्स्थं,
यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुच्येत्।
क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय,
मानो मनागपि हतिं महतीं करोति।।

(युद्ध में भरत ने...) आहाहा! दोनों भाई। उसमें युद्ध में भरत को दोनों की लड़ाई हुई, दोनों सम्यक्त्वी।

मुमुक्षु : भगवान के पुत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के पुत्र। भगवान ने जमीन विभाजित करके दी थी। अब भरत स्वयं पूरा चक्रवर्ती होना चाहता है। उसका जो क्षेत्र है, वह भी मेरा है। भरत चक्रवर्ती है न! उसमें बाहुबलीजी ने इनकार किया। पिताजी ने विभाजन करके दिया है, तो युद्ध करो। आहाहा! भगवान के दोनों पुत्र सम्यक्त्वी। तीसरे काल का अन्तिम भाग होगा। आहाहा! उन्हें भी यह क्रोध हुआ। भाई को मार डालूँ। आहाहा! परन्तु वह चारित्रदोष है।

चारित्रदोष समकित को दोष नहीं बनाता। आहाहा! चारित्र का दोष, वह समकित को दोष नहीं लगाता। आहाहा! और समकित का गुण, वह चारित्रदोष को घटा नहीं सकता। दोनों चीज़ अलग है न? आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी के दोष को तो निकाल डालता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनन्तानुबन्धी तो सम्यक्त्व के साथ गया। इसके अतिरिक्त दूसरा चारित्रदोष है। वह समकित है, वह स्वयं तीन कषाय के भाव को टाल नहीं सकता। यह दूसरे गुण की पर्याय है, यह दूसरे गुण की पर्याय है। समकित है, वह श्रद्धागुण की पर्याय है और तीन कषाय है, वह चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है। आहाहा! एक-दूसरे युद्ध करने के लिये खड़े हुए। चक्र चलाया। **(बाहुबली पर चक्र छोड़ा...)** आहाहा! यहाँ बाहर से छह काय के जीवों की दया पाले तो भी मिथ्यादृष्टि। यहाँ बाहुबली को मारे तो भी समकिती।

मुमुक्षु : मारने के कारण से....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस कारण में जरा कषाय की कमजोरी आयी। चक्रवर्ती हुए न? चक्र घर में आया, इसलिए छह खण्ड आधीन होना ही चाहिए। छह खण्ड आधीन होना चाहिए। उसमें बाहुबली आधीन नहीं हुए तो कहा लड़ाई करो। भले पिताजी ने भाग बाँटकर दिया परन्तु तब मैं चक्रवर्ती नहीं था और अभी चक्रवर्ती हुआ हूँ, चक्र मेरे घर आया है। इसलिए छह खण्ड में कोई मालिक नहीं रहेगा। छह खण्ड का मालिक मैं हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : छह खण्ड का मालिक होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक-बालिक कहे, वह कथन है। परद्रव्य का स्वामी कैसा? आहाहा! परन्तु मैं चक्रवर्ती हूँ, इसलिए मुझे पूरा राज्य चक्रवर्ती के कारण से मेरे आधीन चाहिए। आहाहा! सम्यग्दृष्टि। यह दोष है, वह चारित्र का दोष है। वह समकित के दोष को जरा नहीं लगाता। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने भाई को मार डालने का भाव, वह मात्र चारित्रदोष।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्रदोष है। कठिन बात है।

मुमुक्षु : जमीन के टुकड़े के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : जमीन के टुकड़े के लिये नहीं। मैं चक्रवर्ती हूँ। चक्रवर्ती को छह खण्ड आधीन होता है। व्यवहार से बात है।

मुमुक्षु : चक्रवर्ती को इतना अहं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छह खण्ड मेरे आधीन हो, यह व्यवहार की बात है न ? वैसे तो भाई सोगानी ने कहा है, खबर है ? कि तीर्थंकरों ने छह खण्ड नहीं साधे हैं परन्तु तीर्थंकरों ने (चक्रवर्ती आदि ने) अखण्ड आत्मा को साधा है।

मुमुक्षु : वह तो आत्मा की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आत्मा की बात। यह तो बाहर की बात है। समकिती है, तथापि चक्र मारा है। परन्तु बाहुबलीजी चरमशरीरी हैं। उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं, इसलिए उन पर चक्र कुछ चला नहीं। हाथ में आकर खड़ा रहा। आहाहा! चारित्रदोष और समकित दोष दोनों की पूरी जाति अलग है। इतना चारित्रदोष, तो भी समकित को जरा भी दोष नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह संकल्पी हिंसा में जाएगा या उद्योगी हिंसा में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चाहे जिस भी हिंसा में जाए। उद्योग है न ? उसका चारित्रदोष है। निश्चय से तो वह जानता है कि राग है, क्लेश है और वेदन भी है। कषाय हुई और वेदन नहीं, ऐसा है ? समकिती है-ज्ञानी है, तथापि वह क्रोध हुआ, उसका वेदन है। परन्तु वह वेदन मेरी चीज़ नहीं है। मैं स्वभाववाला आत्मा हूँ, ऐसा भान तो उस काल में वर्तता है, तथापि ऐसी क्रिया होती है। आहाहा! कठिन काम है।

(वह चक्र बाहुबलि के दाहिने हाथ में आकर स्थिर हो गया।) भरत ने चक्र चढ़ाया, बाहुबलि के हाथ में आ गया, लो, मारने गया तो हाथ में आया। आहाहा!

मुमुक्षु : चक्र तो चक्र के कारण से चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके कारण से, परन्तु फिर भी व्यवहार से डाला। चक्र से मार डाले उसे। चक्र छूता नहीं, यह चाकू छूता नहीं तो भी यहाँ मारते हैं, मारते हैं और ऐसा कहा जाता है। चाकू है, गले में यहाँ रखो तो वह गले को स्पर्श नहीं करता, तथापि गला छूट जाता है।

मुमुक्षु : आयुष्य नहीं था, इसलिए मर गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है परन्तु चक्र चलाया और मरे हैं कहाँ? आयुष्य पूरा हुआ नहीं। उनने तो मारा। समकिती, तो भी सगे भाई को चक्र मारा, तथापि उस समकित में दोष नहीं है।

मुमुक्षु : समकित...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाधा की यहाँ बात नहीं है। होता है तो कैसे हुआ? करना तो नहीं। करे तो नहीं, परन्तु होवे तो उसकी मर्यादा इतनी है। आहाहा!

अपने दाहिने हाथ में स्थित (उस) चक्र को छोड़कर जब बाहुबली ने प्रव्रज्या ली... लो! आथ में चक्र आया, उसे छोड़ दिया और स्वयं प्रव्रज्या अंगीकार की। आहाहा! **तभी (तुरन्त ही)...** मोक्ष पाते **परन्तु वे (मान के कारण मुक्ति प्राप्त न करके)...** मान था, इसलिए मुक्ति नहीं मिली। आहाहा! यह मान हानि करता है। क्या कहा अब? फिर से तीसरा श्लोक।

भेयं माया-महागर्तान्मिथ्या-घन-तमो-मयात्।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहयः।।

वनचर के भय से... गाय का दृष्टान्त देते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है। ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप।

मुमुक्षु : श्लोक रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ बराबर है।

[श्लोकार्थः] जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए क्रोधादिक भयंकर सर्प.... क्या कहते हैं? जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञान, ज्ञातास्वरूप है, ऐसी उसे खबर नहीं। जैसे खड्डे में वस्तु होती है, वैसे **क्रोधादिक भयंकर सर्प देखे नहीं जा सकते...** आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु। सत्, कायम रहनेवाला सत्ता और चिद् और ज्ञान और आनन्दस्वरूप उसका। उसकी जिसे खबर नहीं है, वह माया, कपट करता है। यह माया, कुटिल कैसी है? **क्रोधादिक...** आहाहा! **भयंकर सर्प देखे नहीं जा सकते...** मिथ्यात्वरूपी जोर में।

शुद्ध चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु अनादि मेरी चीज़ की सत्ता, उसकी आदि नहीं। है, उसकी आदि नहीं; है, उसका नाश नहीं और है, उसके स्वभाव से खाली नहीं। ऐसा मैं आत्मा, ऐसा जिसे आनन्द का अनुभव नहीं है। आहाहा! आत्मज्ञान होने पर आनन्द का अनुभव होता है। अकेला ज्ञान नहीं रहता। अन्यमत में 'नरसिंह मेहता' हुए, उन्होंने ऐसा कहा कि 'ज्यां लगी आत्मातत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी' भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु—सत् चित् ज्ञान। है ज्ञान। सच्चिदानन्द और आनन्द, दो मुख्य लिये हैं - आनन्द और ज्ञान, ऐसा आत्मा का भगवान स्वभाव है। वह शाश्वत् है, नित्य है। उसे न जानकर, जो कुछ माया / कपट करता है, कुटिलता और माया... आहाहा! वह **क्रोधादिक भयंकर सर्प देखे नहीं जा सकते...** ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं, उन्हें देख नहीं सकता। आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? कि अन्तर आनन्द और निर्विकल्प स्वरूप है, उसे न जाननेवाला, उसे जो राग के विकल्प उठते हैं, चाहे जिस प्रकार के हिंसा के, झूठ के, चोरी के, दया, दान के सब विकल्प राग हैं, उस रागरूपी सर्प को, ज्ञानस्वरूपी आत्मा को नहीं जाननेवाले उन्हें नहीं पहचान सकते। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

स्वयं भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मल शाश्वत् है, उसका जिसे ज्ञान नहीं है, वह **जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए क्रोधादिक भयंकर सर्प देखे नहीं जा सकते, ऐसा जो मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाला...** आहाहा! माया में मिथ्यात्व बसता है। मिथ्याश्रद्धा, चैतन्यस्वरूप की पूर्णता के लक्ष्य बिना अकेला राग और दया, दान तथा पुण्य-पाप के विकल्प को अपना स्वरूप माने, वे मिथ्यात्वरूपी अन्धकार के गड्ढे में पड़े हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है और इसलिए उन्हें क्रोध और मान अन्दर सूक्ष्म होता है, उसे मिथ्यात्व के जोर से, विपरीत मान्यता के जोर से वे पहचान नहीं सकते।

अन्तर भगवान देह से तो भिन्न है। यह (देह) तो जड़ है, मिट्टी है। अन्दर कर्म हैं, उनसे भी भिन्न है। यह सब पुण्य हो तो पैसा-धूल मिले। गरीब हो तो पुण्य न मिले, वह पूर्व का पुण्य-पाप है न? उसके कारण से संयोग है। बुद्धि का बारदान हो, उन्हें भी पाँच-पाँच लाख कमायी करते देखे और बुद्धि का खां (विशेष बुद्धिमान) होवे, उसे महीने में पाँच हजार कमायी करना हो तो पसीना उतरे। यह पैसा कहीं प्रयत्न का फल नहीं है। यह तो पूर्व का पुण्य हो, उसका संयोग है। तो उसके कारण... ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि उसमें इसे लोभ और राग होता है तथा क्रोध और मान होता है, सूक्ष्म अभिमान आता है कि हम ऐसे हैं। परन्तु मिथ्यात्व है। सम्यग्दर्शन का भान नहीं। चैतन्य ज्ञातादृष्टा है, उसकी खबर नहीं, इसलिए मिथ्याश्रद्धा में उस विकार को देख नहीं सकते। उस विकार को विकाररूप नहीं देख सकते। आहाहा! कहो, बलुभाई! यह ऐसी बात यहाँ है। यहाँ तो सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, त्रिकाली सत्ता शुद्ध है परन्तु उसकी जैसी त्रिकाली सत्ता शुद्ध है, वैसे त्रिकाल तीनों भूतकाल से भी मलिन दशा चली आती है। उसकी दशा में मलिनता है। वस्तु त्रिकाल शुद्ध है। उस मलिन दशा को अपनी मानी है। आहाहा! पर का भी कुछ कर नहीं सकता तो भी इसे अभिमान में राग और द्वेष के कारण से, मिथ्याश्रद्धा के कारण से उस मिथ्यात्वरूपी गड्ढे में क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, तृष्णा कैसे होते हैं, उसे यह समकित नहीं है इसलिए, आत्मज्ञान नहीं है, इसलिए मिथ्याश्रद्धा में (देख नहीं सकते)। समकित है, वह अन्दर आँख है। आत्मा का भान और उसके कारण कुछ रागादि हो तो उन्हें जान सकता है कि यह राग है। मिथ्यात्व है, वह अन्धा है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा इस त्रिकाली स्वरूप के लिये अन्ध... आहाहा! और वर्तमान होनेवाले विकारी के परिणाम विकल्प, उसके लिये भी अन्ध है। दोनों को नहीं जानता। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह यहाँ कहते हैं। **क्रोधादिक भयंकर सर्प देखे नहीं जा सकते...** गड्ढे में छुप रहे हैं। अर्थात् यह क्या कहा? भगवान चैतन्यस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु का जिसे ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं। यदि अनुभव होवे, तब तो आनन्द का स्वाद आवे। आत्मज्ञान होवे, तब तो आत्मा में आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द से सर्वांग आनन्द से भरपूर है, इसलिए यदि आत्मा का ज्ञान होवे तो उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। उसके कारण फिर कुछ क्रोधादि हों तो उनका ज्ञान होता है कि मेरी कमजोरी से यह सब हुआ है अर्थात् चैतन्य को भी जानता हैं। ज्ञानी जो चैतन्यस्वरूप है, उसे भी जानता है और रागादि आवें, उन्हें भी मुझसे प्रत्यक्ष (भिन्न) हैं, ऐसे दोनों को जानता है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि चैतन्यस्वरूप का अनजान, चैतन्यचन्द्र चमकता शीतल-शीतल शान्ति से भरपूर... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा है, उसकी जिसे खबर नहीं, उसकी ओर का

झुकाव नहीं, उसका आदर और सत्कार नहीं, उस मिथ्यादृष्टि को राग और द्वेष तथा क्रोध होता है, वह जैसे गड्ढे में पड़ी हुई चीज़ देख नहीं सकता; वैसे इन्हें देख नहीं सकता। भान नहीं है कि यह क्या हुआ? मैंने क्रोध किया या मान किया? क्रोध अर्थात् ऐसा ही क्रोध (ऐसा नहीं)। विकार का प्रेम, पुण्य और पाप के भाव का प्रेम, यह त्रिकाली प्रभु आनन्दस्वरूप के प्रति उसे द्वेष है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का प्रेम नहीं और पुण्य-पाप के परिणाम भाव होते हैं, उनका प्रेम। शुभ-अशुभ विकल्प वृत्तियाँ उठती हैं, उनका जिसे प्रेम है, उसे सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा के प्रति अरुचि का द्वेष है और इस पुण्य-पाप के भाव की रुचि का राग है। आहाहा! अब ऐसा कब करे? मार्ग ऐसा है, बापू! ऐसा विषय अनन्त काल से, अनादि-अनादि काल से हुआ अनन्त काल। वस्तु है तो अनादि की है। जो है, उसकी आदि नहीं हो सकती। वह सत्ता है।

मुमुक्षु : कभी विचार नहीं किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार नहीं किया। यह सत्ता प्रभु अन्दर विराजमान है। वह जिसमें ज्ञात हो, वह चैतन्य सत्ता है। यह शरीर ज्ञात नहीं होता। शरीर (को) जानता है जाननेवाला। यह चैतन्यसत्ता शरीर से भिन्न है। इस प्रकार इन दूसरी चीज़ों को जाननेवाली चैतन्यसत्ता में वह ज्ञात होता है। वह ज्ञात होता है, उस चीज़ से चैतन्यसत्ता भिन्न है। इस चैतन्यसत्ता को जो अन्दर जानता नहीं, उसे अनुभव नहीं करता, उसका उसे आदर और सत्कार नहीं है, वह जैसे गड्ढे में पड़ी हुई वस्तु हो, उसे देख नहीं सकता, इसी तरह मिथ्यात्व के कारण अपने विकार परिणाम क्या होते हैं, वह देख नहीं सकता। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा के कारण अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति के (भान के) अभाव के कारण अनादि से अन्दर सूक्ष्म विकार होता है, उस विकार को वह देख नहीं सकता। क्योंकि विकार का जाननेवाला उसने जाना नहीं। आहाहा! जाननेवाले को जाने बिना राग और पुण्य-पाप मुझसे भिन्न क्या है, यह जान नहीं सकता। आहाहा!

अन्दर सूक्ष्म विकल्प उठता है, कुछ ऐसा करूँ या ऐसा करूँ—ऐसा विकल्प उठता है, वह राग है, विकार है, वह कषाय है। कषाय अर्थात् कष—संसार की आय। उसमें संसार का-भटकने का लाभ है। आत्मा अकषाय है, उसका स्वरूप अकषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभरहित उसका स्वरूप है। ऐसे स्वरूप का जिसे ज्ञान नहीं,

उसे मिथ्याश्रद्धा में गड्ढे में पड़ी हुई चीज़ जैसे गहरी दिखती नहीं, उसी प्रकार उसे क्रोध, मान, माया, लोभ बारीक-सूक्ष्म होते हैं, उन्हें वह देख नहीं सकता। आहाहा! है ?

जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए क्रोधादिक भयंकर सर्प... आहाहा! कुछ प्रतिकूल संयोग आने पर अन्दर अरुचि खड़ी हो, वह द्वेष है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी देख नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि चैतन्य का भान नहीं, इसलिए नहीं द्वेष का भान। अन्दर सूक्ष्म द्वेष हो जाता है, वह किस प्रकार होता है, उसे नहीं देख सकता। बलुभाई! यहाँ तो सब कठिन काम है। धर्म की चीज़। आहाहा! इसी प्रकार कुछ अनुकूल चीज़ देखकर अन्दर मान आता है या कोई इसकी महिमा करे, प्रशंसा करे, उसमें इसे मान आता है परन्तु उस मान को देख नहीं सकता क्योंकि सम्यक् चैतन्य जो स्वरूप है, उसने जाननेवाले को जाना नहीं, इसलिए मिथ्याश्रद्धा में ऐसे विकार हों, उन्हें वह पहिचान नहीं सकता। आहाहा! कठिन बात है, भगवान!

यहाँ कुछ दया पालन करना, व्रत पालना, यह यहाँ नहीं। पर की दया तो पाल नहीं सकता। वह तो परद्रव्य है, उसकी आयुष्य होवे तो जीवे, न आयुष्य होवे तो मरे। आहाहा! यह डॉक्टर-वॉक्टर उसे जिलाते हैं या नहीं ? वे जिला सकने के लिये नहीं आये हैं। यह तो देखने के लिये प्रेम से आये हैं। आहाहा! यह वस्तु... यहाँ हेमन्तकुमार नहीं थे। हेमन्तकुमार डॉक्टर थे। वे ऐसा जरा कुछ किसी की दवा का काम करते थे। यहाँ दो-तीन बार आये थे। वहाँ बोले, मुझे कुछ होता है। वे कुर्सी पर बैठे। उड़ गये। देह की स्थिति पूरी हो, उसे रोकने में कोई समर्थ नहीं है। आहाहा! जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस विधि से, जिस रीति से, जिस प्रकार से होना है, वह निश्चित है। उसे बदलने के लिये इन्द्र, जिनेन्द्र कोई समर्थ नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए क्रोधादिक...** बात क्या करते हैं ? जरा सूक्ष्म करते हैं। अन्दर के विकारभाव, सूक्ष्म विकल्प उठे, मैं आत्मा हूँ - ऐसा भी एक विकल्प उठे, वह भी राग है। आहाहा! और यह मैं नहीं - ऐसा भाव भी एक राग है। ऐसे राग के, विकार के भाव को वास्तविक चैतन्यतत्त्व को जाननेवाले-देखनेवाले का ज्ञान नहीं होने से, जाननेवाला-देखनेवाला भगवान आत्मा, उससे विरुद्ध भाव को वह पहचान नहीं सकता। आहाहा! बात तो बहुत अच्छी है।

जिसने आत्मा को जाना, वह आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, अतीन्द्रिय ज्ञान और शान्ति के रस से भरपूर है। ऐसा जिसने जाना, उसे आत्मज्ञान में आत्मा का अतीन्द्रिय स्वाद आये बिना नहीं रहता। और अतीन्द्रिय स्वाद का जहाँ अभाव है, वहाँ समझना कि प्रभु चैतन्य के प्रति उसे रस नहीं है। उसे पुण्य और पाप के विकल्प तथा राग का रस है। वह सूक्ष्म है, उसे जैसे गड्ढे में पड़ी हुई वस्तु देख नहीं सकता, वैसे मिथ्यादृष्टि, विकार के भाव का नुकसान क्या है और कितना विकार किस प्रकार का होता है, उसे देख नहीं सकता। आहाहा! है ?

मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाला... आहाहा! राग, दया के राग को भी अपने लाभ के लिये माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है क्योंकि राग, वह चैतन्य का स्वरूप नहीं है। चैतन्य भगवान तो ज्ञातादृष्टा चैतन्य ज्ञायक है। उसे न देखकर राग को अकेले को अस्तित्वरूप से देखता है परन्तु देखने पर उसका भी वास्तविक ज्ञान वह नहीं कर सकता, क्योंकि चैतन्य का ज्ञान वास्तविक नहीं है, इसलिए यह राग का भाग है या नहीं ? या यह विकल्प है या नहीं ? यह राग है या नहीं ? यह दोष है या नहीं ? यह निर्दोष भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु चैतन्य है, उसे न जाननेवाला, उससे विरुद्ध दोष को भी नहीं जान सकता। आहाहा! यह समझ में आया ?

क्योंकि दोष को जाने कब ? - कि निर्दोष तत्त्व जानने में आया हो तो उसके साथ मिलान करे तो जाने। मिलान किसके साथ करना ? पूरे दिन सूक्ष्म विकार और दोष ही होते हैं। सूक्ष्म विकल्प किया ही करता है। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह सब राग है, यह सब कषाय है। कषाय अर्थात् कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। कषाय उसे कहते हैं कि जिससे संसार में भटकने का लाभ मिले। लाभ मिले, भटकने का। आहाहा! परन्तु जिसे यह आत्मा कषाय और पुण्य-पाप के भाव से रहित है, उसकी जिसे खबर नहीं, उस खबररहित प्राणी की दशा में विकार कितना और किस प्रकार से होता है ? उसे विकार कहना या नहीं ? इसकी भी उसे खबर नहीं पड़ती। आहाहा!

परजीव की दया पालने का भाव / राग आया, वह विकार है। आहाहा! परन्तु आत्मा के ज्ञातादृष्टा के भान बिना उस राग को जान नहीं सकता। वह जाने कि मैंने कुछ अच्छा किया। मैंने कुछ अच्छा किया। आहाहा! गड्ढे में पड़े हुए को जैसे जान नहीं

सकता, मिथ्याश्रद्धा के अन्धकार में विकार की कैसी रीत और कैसी जीत है, विकार का किस प्रकार का स्वरूप है... आहाहा! वह नहीं जान सकता। बहुत सरस बात है, लो! गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी।

मुमुक्षु : डॉक्टर सेवा करे तो अच्छा करता है या खराब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा-वेवा तो किसी से हो नहीं सकती। सेवा-वेवा करने का भाव राग।

गाँधीजी व्याख्यान में आये थे, तब कहा था। (संवत्) १९९५ का वर्ष, राजकोट। मैंने कहा—पर की दया पाल सकता हूँ... वह परवस्तु है या नहीं ? तो वह चीज़ है, वह अपने कारण से टिक रही है या पर के कारण से है ? वह अपने कारण से टिकती है और अपने कारण से बदलती है। उसके बदले दूसरा कहे कि मैं उसे बदला दूँ... आहाहा! वह तो मिथ्यात्व है। (संवत्) १९९५ के वर्ष में कहा था।

मुमुक्षु : फिर कोई सेवा नहीं करेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था सेवा ? सेवा कोई नहीं करता, बापू! आहाहा! क्या कहें ?

सूक्ष्म विकार होता है। इसे अभी खबर नहीं कि यह विकार है और यह निर्विकारी प्रभु है। दोनों के बीच का भेदज्ञान नहीं है, दोनों के बीच का विवेक नहीं है, वह विकार की सूक्ष्मता के भाव को नहीं देख सकता। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! यहाँ तो जन्म-मरणरहित की बात है। जिससे जन्म-मरण हो, भव में भटके, वह तो चींटी, कौआ, कुत्ते के भव में अनन्त भव किये। अनन्त! अनादि का है तो अनादि का रहा कहाँ ? मुक्ति हुई है ? जो कच्चा चना होता है, वह उगता है। चना कच्चा हो तो तुरास देता है और उगता है। इसी प्रकार यदि अज्ञान होवे तो.... आहाहा! दुःख को वेदन करता है और जन्मता है। और जो चना सिंक गया, वह मिठास देता है और उगता नहीं है। इसी प्रकार जो आत्मा के आनन्द का भान हुआ और रागादि से भिन्न करके स्वरूप को जाना, उसने आत्मा को सेंका है, उसे आनन्द आता है और परिभ्रमण नहीं करता। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो शरीर को ९१ वर्ष हुए, ९१। यह तो १८ वर्ष से लगायी है। १८ वर्ष की

उम्र से। दुकान पर थे। हमारी दुकान है न! पालेज में दुकान है। भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज है न? वहाँ दुकान है। अभी बड़ी दुकान है। वहाँ नौ वर्ष रहा। पाँच वर्ष तो मैंने दुकान चलायी। १९६३ से १९६८। ६८ में छोड़ दी। वहाँ बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। पालेज में, वह हमारी दुकान थी। मेरी अर्थात् किसी थी नहीं, व्यर्थ में मानी थी। आहाहा!

इसमें तो विशिष्टता क्या आयी? भाई! कि जिसने यह आत्मा अखण्डानन्द मूर्ति प्रभु जानने में आया नहीं, तो उसे जो राग सूक्ष्म होता है; द्वेष सूक्ष्म होता है; क्रोध, मान, माया, लोभ सूक्ष्म होते हैं, (उन्हें) वह जान नहीं सकता।

मुमुक्षु : मिथ्यादर्शन को भी जान सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे मिथ्याश्रद्धा के कारण हुआ न? यहाँ चैतन्य का भान नहीं हुआ, तब मिथ्याश्रद्धा में रुक गया। मिथ्याश्रद्धा अर्थात् अन्धकार। उस अन्धकार के कारण उसे विकार किसे कहना? क्रोध, मान, माया, लोभ सूक्ष्म किसे कहना? उसे पहिचान नहीं सकता। वह तो मानेगा कि मानो हमने ऐसा किया। अमुक किया... अमुक किया, माने सब। बात ऐसी है, भगवान! आहाहा! यह तो ४५ वर्ष से यहाँ सोनगढ़ में चलती है। यहाँ आये हुए ४५ वर्ष हो गये। ४५ वर्ष में आये थे।

मुमुक्षु : अभी ४५ वर्ष चलेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४५ वर्ष अब चलेगी? अब तो ९१ तो चला। ९१ तो इस वैशाख शुक्ल दूज को लगा है। मुम्बई। अब यह डॉक्टर देखने आया है, क्या है अन्दर? वहाँ भी आया था। कान्तिभाई के यहाँ देखने (आया था)।

मुमुक्षु : दो-तीन बार आया था।

पूज्य गुरुदेवरी : आया था, और दो-तीन बार आया था। परन्तु अब ऐसा सुनने का समय वहाँ नहीं मिला था।

मुमुक्षु : आज सामने से कहा, मुझे साहेब का व्याख्यान सुनना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा किया। अब यहाँ क्या है, वह तो खबर पड़े। आहाहा! इसमें सूक्ष्मता क्या है? कि चैतन्यस्वरूप ज्ञान और आनन्द है, उसकी जिसे खबर

नहीं, उसे मिथ्या अन्धकार है। प्रकाशस्वरूप प्रभु ढँक गया है, उसका अनुभव नहीं है, आनन्द का स्वाद नहीं है। वह वस्तु मिथ्याश्रद्धा से ढँक गयी है; इसलिए इसे मिथ्याश्रद्धा द्वारा अन्दर सूक्ष्म विकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष होते हैं, उसे यह पहिचान नहीं सकेगा। उसमें पड़ा हुआ मानेगा कि हम कुछ करते हैं और हम कुछ चीज़ हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाला मायारूपी महान गड्ढा... आहाहा! कपटरूपी। सूक्ष्म कपट भी किसे कहा जाए, उसकी इसे खबर नहीं पड़ती। आहाहा! सूक्ष्म कपट, सूक्ष्म क्रोध अन्दर होता है। अन्दर जरा राग (रुचता है), आत्मा नहीं रुचता, कठिन लगता है। ऐसे भाव को भी यहाँ क्रोध कहते हैं। आहाहा! भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्मलानन्द, निर्विकारी का पिण्ड प्रभु, वह जिसे नहीं रुचता, नहीं पोषाता, उसे राग में प्रेम और रुचि तथा पोषाण आया है और इसलिए वह राग को नहीं जान सकेगा। यह मिथ्या अन्धकार है। सम्यक् प्रकाश जागृत नहीं है। यदि अन्दर से सम्यक् प्रकाश जागृत हो तो उसे भी अभी रागादि होते हैं तो वह जानता है कि यह राग है, मैं नहीं। अभी विकार है, दुःख है। मेरी चीज़ आनन्द भिन्न है, ऐसा ज्ञानी ज्ञानस्वरूप को जानते हुए दोष को बराबर जितने-जितने प्रमाण में होता है, उतने प्रमाण में आत्मा से भिन्न उसे जानता है। आहाहा!

अज्ञानी... आहाहा! चैतन्य की जागती ज्योति चैतन्यस्वरूप प्रभु, चैतन्य के प्रकाश बिना 'यह है'—यह जाने कौन? शरीर कुछ जानता है कि मैं शरीर हूँ? शरीर की सत्ता का अस्तित्व जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह ज्ञानसत्ता, वह आत्मा है। जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होता है यह... यह... यह... वह यह नहीं ज्ञात होता। इसकी सत्ता, ज्ञान की सत्ता, वहाँ ज्ञान ज्ञात होता है परन्तु उसकी इसे खबर नहीं है, इसलिए मानो कि यह जानता हूँ... यह जानता हूँ। परन्तु यह जिसके ज्ञान बिना यह है, ऐसा जाने कौन? आहाहा! ऐसा जो पर का ज्ञान भी स्वयं से होता है। वह पर के कारण नहीं। ऐसी सूक्ष्मता, मिथ्यात्वरूपी गड्ढे में पड़ा हुआ नहीं देख सकता। यह दृष्टान्त दिया है न?

घोर अन्धकारवाला मायारूपी महान गड्ढा... आहाहा! 'मायामा मिथ्यात्व बसे'- आता है, भाई! कहीं श्लोक में आता है। माया, कपट, कुटिल, बहुत सूक्ष्म माया। उसकी माया का, कपट का स्वरूप ही उसे ख्याल में नहीं आता। यह माया है या नहीं? आहाहा!

मायारहित प्रभु के ज्ञान बिना, उसके प्रकाश बिना राग को जाननेवाला कौन है ? यह ज्ञान किया नहीं तो जाननेवाला रहता नहीं। उस अन्धकार में पड़े हुए... आहाहा! सूक्ष्म राग-द्वेष को भी नहीं जान सकता।

मुमुक्षु : इन्द्रियाँ होवे तो ज्ञान होवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय-फिन्द्रिय जड़, काम नहीं करती। इन्द्रियाँ न हो और अन्दर आत्मा जानता है। इन इन्द्रियों से नहीं जानता। ये इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, मिट्टी हैं। इन्द्रियों को भी जाननेवाला भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसी जब तक खबर नहीं, तब तक इन्द्रिय से जानता हूँ, इससे जानता हूँ, वह मिथ्यात्व अन्धकार के बड़े गड्ढे में पड़े हैं। आहाहा! जहाँ तक इन्द्रियों से भी पार है। वह (इन्द्रियाँ) तो जड़ मिट्टी है। वे तो श्मशान में राख होंगी। भगवान चैतन्य है, वह तो नित्य सत्ता है, अनादि है। वह सत्ता तो अन्यत्र चली जाएगी। अब नहीं जाना वह मिथ्यादृष्टि चौरासी के अवतार में भटकेगा। जिसने आत्मा का स्वरूप जाना है, उसे कुछ कदाचित् रागादि थोड़े रहें तो एकाध-दो भव करे, परन्तु फिर भी उसे जानकर, राग को जानने से राग ज्ञात होता है, वह ज्ञान आत्मा को जानने पर राग ज्ञात होता है, उसे विशेष भव नहीं हो सकते। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)